प्रथम अध्याय

न्याय दर्शन

1) 'न्याय' शब्द का अर्थ
2) न्यायशास्त्र के अन्यान्य नाम
3) न्यायशास्त्र का उद्देश्य और प्रयोजन
4) न्यायशास्त्र का महत्त्व
5) न्यायकार गौतम
6) गौतम के सोलह पदार्थ
7) न्यायसूत्र का विषय
8) न्यायदर्शन का क्रमिक विकास
9) न्याय का साहित्य भंडार
10) इस ग्रन्थ का विषय विन्यास

न्यायदर्शन

न्यायदर्शन का विषय न्याय का प्रतिपादन है । न्यायः का व्यापक अर्थ है विभिन्न प्रमाणों की सहायता से वस्तु-तत्त्व की परीक्षा इन प्रमाणों के स्वरूप का वर्णन करने से तथा इस परीक्षा-प्रणाली का व्यावहारिक रूप प्रकट करने के कारण यह दर्शन न्याय-दर्शन के नाम से पुकारा जाता है । 'न्याय' शब्द का एक विशिष्ट पारिभाषिक अर्थ है- प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय तथा निगमन नामक परार्थानुमान के पञ्च अवयव । इस संकीर्ण अर्थ के 'न्याय' शब्द का प्रयोग प्रमाणों में अन्यतम पदार्थ अनुमान के लिये किया जाता है । इसका दूसरा नाम है- आन्वीक्षिकी अर्थात् अन्वीक्षा के द्वारा प्रवर्तित होने वाली विद्या । अन्वीक्षा का अर्थ है (1) प्रत्यक्ष तथा आगम पर आश्रित अनुमान अथवा (2) प्रत्यक्ष तथा शब्द प्रमाण की सहायता से अवगत विषय का अनु (पश्चात्) ईक्षण-पर्यालोचन -ज्ञान, अर्थात् अनुमिति । अन्वीक्षा के अनुसार प्रवृत्त होने से विद्या का नाम आन्वीक्षिकी है । अनुमान प्रक्रिया में हेतु का महत्त्व सबसे अधिक होता हैं अतः इसका नाम हेतुविद्याा या हेतुशास्त्र भी है । विद्धानों की परिषद में किसी गूढ़ विषय के विचार या शास्त्रार्थ को 'वाद' के नाम से पुकारते हैं । ऐसे शास्त्राओं में नितान्त उपादेय होने के कारण यह वादविद्या या तर्कविद्या के नाम से भी प्रसिद्ध है । प्रमाण की मीमांसा करने से न्यायदर्शन प्रमाणशास्त्र भी कहलाता है । इन विभिन्न अभिधानों पर दृष्टिपात करने से न्याय का मूल प्रयोजन छिपा नहीं रह जाता कि प्रमाणों के द्वारा प्रमेय वस्तु का विचार करना और प्रमाणों की विस्तृत विवेचना करना न्यायदर्शन का प्रधान उद्देश्य माना है ।[1]

१. 'न्याय'शब्द का अर्थ

न्याय शब्द का अर्थ न्याय शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है ।

1. साधारणतः 'न्याय' शब्द का अर्थ होता है । ''नियमेन ईयते'' अर्थात् नियमयुक्त व्यवहार। न्यायलय, न्यायकर्त्ता आदि प्रयोग इसी अर्थ को लेकर हैं ।
2. प्रसिद्ध दृष्टान्त के साथ 'सदृश' अर्थ में भी न्याय का व्यवहार होता है । यथा- बीजांकुरन्याय, काकतालीय न्याय, स्थालीपुलक न्याय इत्यादि ।
3. किन्तु दार्शनिक साहित्य में न्याय का अर्थ होता है

---

1. प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः वात्स्यायन- न्यायभाष्य 1/1/1

''नीयते प्राप्यते विवक्षितार्थ सिद्धिरनेन अति न्यायः''[१]

अर्थात् जिसके द्वारा किसी प्रतिपाद्य विषय की सिद्धि की जा सके जिसकी सहायता से किसी निश्चित सिद्धान्त पर पहुँचा जा सके, उसी का नाम 'न्याय' हैं ।

एक दृष्टान्त ले लीजिये । सामने पहाड़ पर ''धुआ'' देखकर आप अनुमान करते हैं कि वहाँ जरूर आग है । इस विषय को सिद्ध करने के लिये निम्नोक्त तर्कप्रणाली का अनुकरण करना पड़ेगा ।

1) पर्वत पर अग्नि है (प्रतिज्ञा)

2) क्योंकि वहाँ धुआँ है (हेतु)

3) जहाँ धुआँ रहता है वहाँ आग भी रहती है जैसे रसोईघर के (उदाहरण)

4) पर्वत पर भी धुआँ है (उपनय)

5) इसलिये पर्वत पर अग्नि है (निगमन)

यहाँ प्रतिपाद्य विषय है पर्वत पर अग्नि का होना यह साध्य वा प्रतिज्ञा है । इसका साधन वा प्रमाण हैं । पर्वत पर धुआँ दिखलाई पड़ना । यह हेतु है । धुआँ अग्नि के अस्तित्त्व का सूचक चिह्न क्यों है ? इसीलिये कि सर्वत्र धुएँ का सम्बन्ध आग के साथ पाया जाता हैं । जैसे रसोईघर में । यह उदाहरण है । रसोईघर की तरह पहाड़ पर भी आग होगी। यह निगमन या निष्कर्ष है ।

उपर्युक्त पाँचों अवयव - (1) प्रतिज्ञा (2) हेतु (3) उदाहरण (4) उपनय (5) निगमन। मिलकर प्रतिपाद्य विषय को सिद्ध करने में समर्थ होते हैं । इन्हीं पचावयवों से युक्त वाक्यसमूह को 'न्याय' अथवा 'न्यायप्रयोग' कहते हैं । वात्स्यायन कहते हैं ।

''साधनीयस्यार्थस्य यावति शब्दसमूहे सिद्धिः परिसमाप्यते स पंचावयवोपेतवाक्यात्मको न्यायः''[२]

अर्थात् साध्य विषय की सिद्धि के हेतु जो आवश्यक अवयव स्वरूप पंचवाक्य हैं । उनका समूह ही न्याय है । प्रतिज्ञा, हेतु आदि अवयव 'न्यायावयव' कहलाते हैं । सम्पूर्ण न्याय

---

1. गौतम- न्यायसूत्र - 1/1/1
2. वात्स्यायन भाष्य वलितम् गौतमीयं- न्यायदर्शनम् , पृ.क्र. 11

प्रयोग का फलितार्थ वा निचोड़ है । अन्तिम निगमन । अतएव वह 'परमन्याय' कहलाता हैं ।

उपर्युक्त पंचावयव अनुमान के अंग हैं । दूसरों के समक्ष प्रतिपाद्य विषय को स्थापित करने के लिये ही अन पाँचों महावाक्यों का सहारा लेना पड़ता है । अतः इनके प्रयोग को 'परार्थनुमान' कहते हैं ।

इस तरह न्याय शब्द से परार्थानुमान का ग्रहण होता हैं । अतः माधवाचार्य सर्वदर्शन-संग्रह में न्याय को परार्थानुमान का अपर पर्याय बतलाते हैं ।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो न्याय अथवा परार्थानुमान में सभी प्रमाणों का संघटन हो जाता है । प्रतिज्ञा में शब्द, हेतु में अनुमान, उदाहरण में प्रत्यक्ष और उपनय में उपमान इस प्रकार सभी प्रमाण आ जाते हैं । इन सबों के योग से ही निगमन वा फलितार्थ निकलता है । अतएव न्याय वार्त्तिक में कहा गया है ।

समस्तप्रमाणव्यापारादर्थाधिगतिर्न्यायः[1]

अर्थात् समस्त प्रमाणों के व्यापार के द्वारा किसी निष्कर्ष वा फल की प्राप्ति होना ही 'न्याय' है ।

इस प्रकार न्याय शब्द की व्याप्ति उन सभी विषयों में हो जाती है । जहाँ प्रमाण की सहायता से पदार्थ का विवेचन किया गया हो । इसलिये प्रत्येक शास्त्र की न्याय संज्ञा हो सकती है । इसी कारण मीमांसा प्रभृति के कतिपय ग्रन्थों के नाम में भी न्याय शब्द देखने में आता है । यथा- मीमांसा न्याय प्रकाश, न्यायरत्नाकर, जैमिनीयन्याय-माला विस्तार इत्यादि इन स्थलों में 'न्याय' शब्द का अर्थ ''युक्तिसंगत विवेचन'' ।

4. किन्तु न्याय शब्द ऐसे व्यापक अर्थ में विशेष प्रचलित नहीं हैं । वह गौतमीय दर्शन के अर्थ में रूढ़ हो गया हैं । गौतमरचित सूत्र और उस पर जो भाष्यवृत्ति आदि का विशद साहित्य निर्मित है । वही न्याय के नाम से प्रसिद्ध है । इसका कारण यह है कि गौतम और उनके अनुयायियों ने न्याय (अनुमान) और उसके अवयवों की विवेचना को ही अपना केन्द्रीभूत विषय बनाया है ।

इतना ही नहीं 'न्याय' शब्द के अन्यान्य अर्थ भी गौतमीय दर्शन पर लागू होते हैं । यह शास्त्र युक्ति का नियमनिर्धारण कर सत् और असत् पक्ष का निर्णय करता है । अतः यह

---

1. उदयन- न्याय वार्तिक, पृ.क्र.2

प्रचलित अर्थ में भी न्यायकर्त्ता कहा जा सकता है । नैयायिकरण उदाहरण या दृष्टान्त के बल पर अपना पक्ष सिद्ध करते हैं । (जैसे- रसोईघर में धुएँ के साथ आग है तो पहाड़ पर भी ऐसा ही होगा) । इस अर्थ में भी न्याय शब्द सार्थक हो जाता है । इस प्रकार गौतमीय शास्त्र की 'न्याय' संज्ञा सभी दृष्टियों से उपयुक्त और समीचीन हैं ।[1]

२) न्यायशास्त्र के अन्यान्य नाम

न्याय शास्त्र अपनी बीजावस्था में ''आन्वीक्षिकी विद्या'' के नाम से प्रसिद्ध था । आन्वीक्षिकी का अर्थ है -

''प्रत्यक्षागमाभ्यामीक्षितस्यान्वीक्षणाम् ।
आन्वीक्षा तथा वर्त्तते इति आन्वीक्षिकी ।।''[२]

अर्थात् प्रत्यक्ष वा आगम के द्वारा उपलब्ध विषय का पुनः अन्वीक्षा (अनु-पश्चात्, ईक्षण-अवलोकन) करना ही अन्वीक्षा है । इसलिये तर्क के द्वारा किसी विषय का अनुसंन्धान करने की संज्ञा 'अन्वीक्षिकी' हुई । यही आन्वीक्षिकी विद्या कालान्तर में न्याय वा तर्क के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

आधुनिक समय में 'न्यायशास्त्र' वा 'तर्कशास्त्र' शब्द ही विशेष प्रचलित है । इस शास्त्र के अध्ययन के बाद करने की कला में प्रवीणता प्राप्त होती है अतः इसे 'वादविद्या' भी कहते हैं । न्यायदर्शन में प्रमाण का ही महत्त्व सर्वोपरि है अतः इसे प्रमाणशास्त्र भी कहते हैं। साध्य वस्तु को प्रमाणित करने के लिये सबसे मुख्य वस्तु है 'हेतु' । बिना हेतु दिये प्रतिभा का कुछ भी मूल्य नहीं । इसलिए नैयायिकगण हेतु को बड़ा ही प्रमुख स्थान देते हैं । इसी कारण न्यायशास्त्र को 'हेतु विद्या' भी कहते हैं ।

न्याय दर्शन का मूल स्वरूप जो सूत्रग्रन्थ है उसके रचयिता हैं । गौतम मुनि । अतः न्याय दर्शन को 'गौतमीय शास्त्र' कहते हैं । गौतम का एक नाम अक्षपाद भी है ।

अतः सर्वदर्शन-संग्रह में न्याय के लिये 'अक्षपाद दर्शन' शब्द मिलता है ।

३. न्यायशास्त्र का उद्देश्य और प्रयोजन-

न्याय शास्त्र का उद्देश्य है प्रमाण द्वारा ज्ञान के सत्यासत्यत्त्व की परीक्षा करना ।

---

1. प्रो. हरिमोहन झा - भारतीय दर्शन परिचय पृ.क्र.2-3
2. वात्स्यायन - न्यायसूत्र भाष्य - 1/1/1

इसीलिये न्याय 'प्रमाणशास्त्र' वा 'परीक्षा शास्त्र' कहा जाता है । प्रमाण-लक्षण के द्वारा वस्तुसिद्धि की यथार्थ रीति निर्धारित करना ही न्याय शास्त्र का प्रधान लक्ष्य है ।

प्रत्येक शास्त्र का प्रयोजन होता है । प्रयोजन के ज्ञान के बिना किसी भी शास्त्र में किसी व्यक्ति की प्रवृत्ति नहीं होती है । मीमांसाचार्य कुमारिल भट्ट ने भी कहा है ।

सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वाऽपिकस्याचित् ।
यावत् प्रयोजनं नौक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ।।
ज्ञातार्थ ज्ञात संबन्ध श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।
शास्त्रादौतेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ।।[1]

अभिप्राय यह है कि प्रत्येक शास्त्र का तथा प्रत्येक कार्य का जब तक प्रयोजन नहीं कहा जाता है तब तक कोई भी व्यक्ति उसे ग्रहण नहीं करता है । जिस शास्त्र के सम्बन्ध तथा प्रयोजन का ज्ञान रहता है उस शास्त्र को सुनने के लिये श्रोता प्रवृत्त होते हैं । इसलिए किसी भी शास्त्र के प्रारम्भ में उस शास्त्र का प्रयोजन तथा उस प्रयोजन के साथ उस शास्त्र का प्रयोजन तथा उस प्रयोजन के साथ उस शास्त्र का क्या सम्बन्ध है, यह कहना आवश्यक हो जाता है।

बिना प्रमाण के यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता और बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं हो सकती। इस तरह न्याय शास्त्र मोक्ष प्राप्ति के लिये सोपान-स्वरूप वा परमार्थसाधक है । न्यायसूत्रकार पहले ही सूत्र में कहते हैं-

''प्रमाणप्रमेय.....तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः ।''[2]

अर्थात् प्रमाणादि विषयों का तत्त्वज्ञान निःश्रेयस या चरम कल्याण का विधायक है । यही न्यायदर्शन का अन्तिम ध्येय है ।

जब अज्ञात विषय के सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न मत पाये जाते हैं । तब स्वभावतः मन में यह शंका उठती है कि इनमें कौन सत्य है और कौन असत्य । इस शंका का समाधान करने के लिये युक्तिवाद का आश्रय लेना पड़ता है अर्थात् यह विचार करना होता है कि कौन पक्ष युक्तिसंगत है और कौन अयुक्तिसंगत । यह मालुम कैसे होगा ? इसके लिये कोई मान-दण्ड होना आवश्यक है, जो पक्ष प्रमाण की कसौटी में खरा उतरता है वही सत्य माना जाता है इसी कसौटी को तैयार करने के लिये न्यायशास्त्र का प्रयोजन हुआ । बिना प्रयोजन के प्रवृत्ति नहीं

1. उद्योतकर- न्यायवार्त्तिक 12/17
2. गौतम- न्याय सूत्र - 1/1/1

होती प्रयोजन मनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते । न्याय शास्त्र की उत्पत्ति भी प्रयोजनवश हुई । जब वेदोक्त विषयों का स्वार्थियों द्वारा अनर्थ और दुरूपयोग होने लगा तब वेद के सच्चे अर्थ का निर्णय और युक्ति द्वारा उसकी पुष्टि करने की आवश्यकता आ पड़ी । कुतर्कियों से वेद की रक्षा करने के लिए ही गौतमीय शास्त्र का जन्म हुआ । सर्वसिद्धान्तसंग्रहकार भी इस बात का समर्थन करते हैं।

नैयायिकस्य पक्षोऽयं संक्षेपात्प्रतिपद्यते ।
यत्तर्करक्षितो वेदो ग्रस्तः पाषण्डदुर्जनैः ।।[1]

न्यायकर्त्ता गौतम ने वेद को प्रामाणिक और सत्य माना है । पीछे बौद्ध और जैन तार्किकों ने न्याय के शास्त्रों से ही न्याय शास्त्र पर प्रहार करना शुरू किया और वेद को असत्य ठहराने लगे । इनके आक्षेपों का उत्तर देने के लिए नैयायिकों को अपनी शक्ति और भी सुदृढ़ करने की आवश्यकता पड़ी । फलतः न्यायशास्त्र का सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिमार्जन और अनुशीलन होने लगा विपक्षियों के आक्रमण से अपने को बचाने के लिये तरह-तरह के वाग्जालरूपी अभेद्य कवच तैयार किये गये । धीरे-धीरे वाग्युद्ध में विजय प्राप्त करना ही नैयायिकों का मुख्य लक्ष्य बन गया । येनकेन प्रकारेण वाकछलादि द्वारा प्रतिपक्षियों को परास्त करने में ही पराक्रम समझा जाने लगा । इस प्रकार वाद के स्थान जल्प और वितण्डा की प्रधानता हो गई ।

यद्यपि न्यायशास्त्र का असली उद्देश्य तत्त्वबोध है, तथापि आजकल अधिकतर लोग पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा शास्त्रार्थ में विजय प्राप्ति की कामना से ही न्याय के अध्ययन में प्रवृत्त होते हैं । किन्तु यथार्थ नैयायिक उसीको समझना चाहिए जिगीषु (विजय का भूखा) नहीं होकर तत्त्व-बुभुत्सु (तत्त्व का भूखा हो) । व्यक्तिगत लाभ हानि की और जरा भी ध्यान न देकर सत्यपक्ष का ग्रहण और असत्य पक्ष का परित्याग करना ही नैयायिक का सच्चा धर्म है । जो इस उद्देश्य से प्रेरित होकर न्याय का अध्ययन करता है, उसी की विद्या सार्थक है ।[2]

४. न्यायशास्त्र का महत्त्व

विद्वानों की मण्डली में न्यायशास्त्र का बड़ा ही आदर है । बिना न्याय पढ़े कोई पण्डित की गणना ही में नहीं आ सकता । व्याकरण और न्याय ये दोनों विषय पण्डित के लिये अनिवार्य हैं । इसलिये प्राचीन समय से यही परिवाटी चली आती है कि विद्यार्थी को

---

1. बलभद्र- सर्व सिद्धान्त संग्रह- पृ.क्र. 173
2. प्रो. हरिमोहन झा, भारतीय दर्शन परिचय, पृ.क्र. 4

लघुसिद्धान्त कौमुदी (व्याकरण) और तर्कसंग्रह (न्याय) से विद्याध्ययन का श्रीगणेश कराया जाता है ।

न्याय का बोध हो जाने पर सभी शास्त्रों में सुगमतया प्रवेश हो जाता है । कहा भी है -

''गौतमप्रथितं शास्त्रं सर्वशास्त्रोपकारकम्''[1]

न्याय की तर्क शैली और उसके पारिभाषिक शब्द भारतीय संस्कृति में घुलमिलकर उसके आवश्यक अंग बन गये है । यहाँ तक कि अन्यान्य दर्शन भी जो न्याय से मतभेद रखते हैं, न्याय के ही पाररिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हैं । न्याय के ही किसी सिद्धान्त का खण्डन करने के लिये भी उन्हें न्यायानुमोदित पद्धति का ही अवलम्बन करना पड़ता है । इससे बड़कर न्याय शास्त्र की व्यापकता और उपयोगिता का प्रमाण और क्या हो सकता है ?

मनु, याज्ञवल्कय आदि के समय में भी न्यायशास्त्र आदर की दृष्टि से देखा जाता था। मनु कहते हैं -

आर्ष धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धंर्म वेद नेतरः ।।[2]

अर्थात् जो तर्क द्वारा वेदशास्त्र के अर्थ का तत्त्वान्वेषणा करता है, वही धर्म के यथार्थ मर्म को समझ सकता है दूसरा नहीं ।

चतुर्दश विद्याओं के अन्तर्गत न्याय का भी स्थान वाज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-

पुराणान्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।[3]

चौदह विद्याएँ ये है -

(1) चार वेद- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ।

---

1. गौतम- गौतमस्मृति- पृ.क्र. 3
2. मनु- मनुस्मृति 12/106
3. याज्ञवल्क्य- याज्ञवल्क्यस्मृति 1/3

(2) छः वेदाङ्ग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योजिष ।

(3) चार उपाङ्ग - पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र ।

न्याय शास्त्र वेद का उपाङ्ग है ऐसा वचन पुराण में भी पाया जाता है ।

कौटिलीय अर्थ शास्त्र के विद्यासमुद्देश प्रकरण में चार प्रकार ली विद्याएँ मुख्य बतलाई गई हैं । ये चारों विद्याएँ है-

(1) त्रयी (तीनों वेद)

(2) दण्डनीति (राजनीति)

(3) आन्वीक्षिकी (तर्क और दर्शनशास्त्र)

(4) वार्ता (अर्थशास्त्र)

आन्वीक्षिकी विद्या के विषय में कौटिल्य आगे चलकर कहते हैं -

प्रदीपः सर्वविद्यानायुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता ।।[1]

अर्थात् आन्वीक्षकी सभी विद्याओं को दीपक की तरह प्रकाश देने का काम करती है। यह समस्त कार्यों का साधन और सभी धर्मा का आश्रय स्वरूप है ।

इस देश में विद्याध्ययन की जो प्राचीन परम्परा चली आती है, उसमें आज भी ये पाँच प्रधान हैं-

(1) काव्य

(2) नाटक

(3) अलङ्कार

(4) व्याकरण

(5) तर्क

तर्क शास्त्र यथार्थतः सभी शास्त्रों के लिये प्रकाश स्वरूप है ।

---

1. वात्स्यायन- न्याय सूत्र भाष्य - 1/1/1

५. न्यायकार गौतम

न्याय दर्शन के आदि प्रवर्त्तक वा संकलयिता हैं महर्षि गौतम यह बात नहीं है कि गौतम के पहले तर्क विद्या थी ही नहीं । तर्क का अस्तित्व तो उसी समय से मानना पड़ेगा जब से मनुष्य के मस्तिष्क में बुद्धि है । उपनिषद् के समय में भी अनेक विषयों को लेकर तर्क-वितर्क करने की परिपाटी प्रचलित थी । किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि गौतम के पहले तर्क विद्या सुव्यवस्थित रूप में नहीं थी । कम से कम गौतम के पूर्व का कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं हैं जिसमें तर्क प्रमाण, वाद प्रभृति का नियमबद्ध निरूपण हो ।

गौतम ने तर्क-विद्या के लिये वहीं किया है जो पाणिनि ने व्याकरण के लिये किया है। इन शास्त्रों का कोई व्यक्ति विशेष जन्मदाता नहीं हो सकता, केवल उन्नयक हो सकता हैं । जिस तरह पाणिनि ने व्याकरण के नियमों को श्रृंखलाबद्ध किया उसी प्रकार गौतम ने प्रमाण-शास्त्र के तत्त्वों का विश्लेषण कर उसे नियन्त्रित रूप दिया । महर्षि गौतम कौन थे ?

इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देना कठिन है । गौतम और अहल्या की पौराणिक कथा प्रसिद्ध है । मिथिला प्रान्त में कमतौल स्टेशन के निकट अहल्यास्थान है । वहाँ आज भी लोग गौतमकुण्ड और अहल्याकुण्ड में स्नान कर अपने को पवित्र मानते हैं । कहा जाता है कि रामचन्द्रजी इसी रास्ते जनकपुर गये थे । अहल्योद्धार की कथा तो रामायण प्रेमियों को विदित ही हैं ।

अब प्रश्न यह है कि यह पौराणिक गौतम और दार्शनिक गौतम दोनों एक हैं या दो ? पुराणादि में विश्वास रखनेवालों का मत है कि अहल्या के स्वामी गौतम मुनि ही न्यायशास्त्र के रचयिता गौतम हैं । प्रायः किसी रामायण में इसका एक प्रमाण भी मिलता है । जब रामचन्द्रजी वनवास के लिये प्रस्थान करने लगे, तब वशिष्ट आदि मुनियों ने बहुत तरह से उन्हें समझाया, किन्तु उन्होंने एक न सूनी । तब तर्कशास्त्र-विशारद गौतम बुला भेजे गये उन्होंने आते ही रामचन्द्र से प्रश्न किया ''अपने जो वनवास का संकल्प कर रखा है सो किस अर्थ में? यदि सभी वनों में वास'' यह अर्थ हो तब तो 14 वर्ष में भी वह संकल्प पूरा नहीं हो सकता। और यदि किसी एक वन में वास ऐसा अभिप्रेत हो तब फिर अयोध्या के निकट ही किसी वन में क्यों नहीं रह जाते ?'' इस पर रामचन्द्र निरूत्तर हो गये और उन्होंने हँसी में कहा -

यः पठेत् गौतमीं विद्यां नहिं शान्तिमवाप्नुयात् ।[1]

---

1. गौतम- गौतम स्मृति पृ.क्र.6

इस उपाख्यान के विषय में लोग जो कहें, किन्तु इतना तो अवश्य है कि रामायाणयुग से ही नैयायिक गौतम का नाम प्रसिद्ध है ।

महाभारत के शान्तिपर्व में गौतम का मेधातिभि नाम से उल्लेख पाया जाता है । भास के प्रतिभा नाटक में भी न्यायकर्ता मेधातिथि का जिक्र मिलता है ।

गौतम मुनि 'अक्षपाद' नाम से भी प्रसिद्ध हैं । इस नाम के सम्बन्ध में एक मनोरञ्जक किंवदन्ती हैं । कहा जाता है कि महर्षि गौतम प्रतिदिन निस्तब्ध रात्रि में एकान्त भ्रमण करते और शास्त्र चिन्तन में तल्लीन हो सूत्र रचना करते चलते थे । वे अपनी विचारधारा में इतने मग्न हो जाते थे कि आगे क्या है, इसकी उन्हें कुछ भी सुध नहीं रहती थी । एक दिन वे किसी पदार्थ का विश्लेषण करते-करते कुएँ में जा गिरे । इस प्रकार उनके तत्त्वचिन्तन में बाधा पड़ते देख विधाता ने उनके पाँवों में भी दृष्टि शक्ति प्रदान कर दी । तब से वे 'अक्षपाद' (जिसके पाँव में आँख हो) कहलाने लगे ।

महर्षि गौतम के समय को लेकर आधुनिक विद्वानों में मतभेद पाया जाता है । बहुत से पाश्चात्य और एतद्देशीय विद्वान् न्यायसूत्र में बौद्धानुमोदित शून्यवाद और विज्ञानवाद का खण्डन देखकर उसका रचना काल बौद्ध युग में ठहरते हैं । इस हिसाब से गौतम का समय बुद्ध के अनन्तर और नागार्जुन, बसुबन्धु प्रभृति के आसपास आ जाता है । किन्तु यह तर्क उतना प्रबल नहीं जाँचता । न्यायसूत्र में केवल मतान्तर का निरास पाया जाता है, किसी बौद्ध आचार्य का नाम नहीं हो सकता ,न्यायसूत्र में जिन सिद्धान्तों का खण्डन पाया जाता है वे बौद्धयुग से पहले भी इस देश में प्रचलित रहे हों । बृहस्पति आदि के लौकायतिक मत तो बहुत ही प्राचीन है । इसलिये किसी नास्तिक मत विशेष का खण्डन करना ही अर्वाचीनता का द्योतक नहीं कहा जा सकता ।[1]

६. गौतम के सोलह पदार्थ-

गौतम का पहला सूत्र है-

प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णय-वादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगम[2]

---

1. प्रो. हरिमोहन झा- भारतीय दर्शन परिचय, पृ.क्र.7-8
2. गौतम, न्याय सूत्र 1/1/1

इस सूत्र में गौतम निम्नलिखित सोलह पदार्थों के नाम गिनाते हैं -

1) प्रमाण (Means of knowledge)

2) प्रमेय (Olject of knowledge)

3) संशय (Daulet)

4) प्रयोजन (Purpose)

5) दृष्टान्त (Example)

6) सिद्धान्त (conclusion)

7) अवयव (Members of sullogism

8) तर्क (hypothesis)

9) निर्णय (Verification)

10) वाद (Argument)

11) जल्प (Wrangling)

12) वितण्डा (Sophistry)

13) हेत्वाभास (Fallacy)

14) धल (Cavilling)

15) जाति (Futile Refutation)

16) निग्रहस्थान (Points of Defeat)

गौतम ने उपर्युक्त सोलह पदार्थों की जो लम्बी तालिका पेश की है, उस पर काफी नुकताचीनी की गई है । अवयव, दृष्टान्त प्रभृति प्रमाण के अन्तर्गत ही आ जाते हैं । फिर उनका पृथक नाम-निर्देश क्यों किया गया ? वस्तुतः देखा जाय तो प्रमाण और प्रेमेय इन दोनों के अन्तर्गत ही समस्त विषय आ जाते हैं । बल्कि यों कहा जा सकता है कि केवल प्रमेय में ही सभी पदार्थों का अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि प्रमाण आदि पदार्थ भी ज्ञान का विषय होने पर प्रमेय -काटि में आ जाते हैं । जैसे- तुलादण्ड स्वयं मान का साधन होते हुए भी मान का

विषय (परिमेय) हो सकता है ।

प्रमाणस्य प्रमेयत्वं तुलाप्रामाण्यवत् [1]

इस तरह प्रमाण प्रभृति यावतीय विवच्यमान पदार्थ प्रमा (ज्ञान) का विषय होने के कारण प्रमेय बन जाते हैं । फिर गौतम ने सोहला नाम क्यों गिनायें ?

इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार कणाद ने वैशेषिक सूत्र में पदार्थों का वर्गीकरण किया है, उस प्रकार भिन्न-भिन्न मूल तत्त्वों का निरूपण करना गौतम का अभिप्राय नहीं था । वे सिर्फ उन्हीं प्रमुख विषयों की सूची (Talele of contents) बतलाते हैं जिनका सविस्तार वर्णन करना उन्हें अभीष्ट हैं । अतः गौतयोक्त पदार्थों को मूल पदार्थ (Cotegory) न समझकर न्यायसूत्र के विवेच्य विषय (Topic) मात्र समझाना चाहिये ।?

७. न्यायसूत्र का विषय

गौतमरचित न्यायसूत्र न्यायदर्शन का मूलग्रन्थ है । न्याय सूत्र पाँच अध्यायों में विभक्त है । प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक खण्ड हैं । समस्त सूत्रों की संख्या 300 के करीब है । न्यायसूत्र के विषय का विवरण नीचे दिया जाता है ।

१) प्रथम अध्याय

प्रथम आह्निक में पहले प्रमाण प्रमेय आदि षोऽश पदार्थों का नाम-निर्देश किया गया है। फिर प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द इन चतुर्विध प्रमाणों के लक्षण दिये गयें हैं । तदनन्तर प्रमेय के लक्षण और विभाग किये गये हैं प्रमेयों के अन्तर्गत आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति दोष प्रेत्यभाव (पूनर्जन्म), फल, दुःख और उपवर्ग (मोक्ष) का निरूपण किया गया है । तब संशय, प्रयोजन और दृष्टान्त के निरूपण के बाद सिद्धान्त का लक्षण और विभाग किया गया है । सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम -ये चार प्रकार के सिद्धान्त बतलाये गये हैं । फिर न्याय के भिन्न-भिन्न अवयव प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन समझाये गये है । तदनन्तर तर्क और निर्णय की विवेचना की गई है ।

द्वितीय अह्निक में पहले वाद, जल्प और वितण्डा के लक्षण बतलाये गये हैं । फिर हेत्वाभास के प्रभेद दिये गये हैं । तब त्रिविध छल के लक्षण कहे गये हैं । अन्त में जाति और

---

1. वात्स्यायन भाष्य संवलितम् गौतमीयं - न्यायदर्शनम्, पृ.क्र.89

निग्रहस्थान की परिभाषा की गई है ।

२) द्वितीय अध्याय

इसमें निम्नलिखित विषय हैं- संशय सम्बन्धी पूर्व पक्ष और उसका समाधान प्रमाण चतुष्टय सम्बन्धी पूर्वपक्ष और अन्तिम सिद्धान्त प्रत्यक्ष के लक्षण में आक्षेप औश्र उसका परिहार-अनुमान और उपमान के विषय में शंकाएँ और उनका समाधान शब्द प्रमाण पर आक्षेप और उसका निराकरण शब्द का अनित्यत्व साधन-व्यक्ति आकृति और जाति का लक्षण ।

३) तृतीय अध्याय

इसमें मुख्यतः ये विषय हैं आत्मा आदि द्वादश प्रमेयों की परीक्षा- इन्द्रियचैतन्यवाद, शरीरात्मवाद प्रभृति नास्तिक मतों का खण्डन आत्मा का नित्यत्व-प्रतिपादन-इन्द्रिय और विषय का भौतिकत्व बुद्धि और मन की परीक्षा ।

४) चतुर्थ अध्याय

इसमें प्रवृत्ति और दोष की व्याख्या जन्मान्तर के सम्बन्ध में सिद्धान्त -दुःख और अपवर्ग की समीक्षा अवयव और अवयवी का सम्बन्ध आदि विषय वर्णित हैं ।

५) पंचम अध्याय

इसमें प्रथम आह्निक में जाति के चौबीस प्रभेद समझाये गये हैं । द्वितीय आह्निक में बाईस प्रकार के निग्रह स्थान बतलाये गये हैं । इस तरह यक सूत्रग्रन्थ समाप्त हुआ हैं ।[1]

८. न्यायदर्शन का क्रमिक विकास

न्यायसूत्र का वात्स्यायन कृत प्रसिद्ध प्राचीन और प्रामाणिक भाष्य है । वात्स्यायन दक्षिणात्य ब्राह्मण थे । इनका दूसरा पक्षिबल स्वामी भी मिलता है । वात्स्यायन भाष्य देखने से पता चलता है कि उसकी रचना न्यायसूत्र के बहुत पीछे हुई है । दोनों में कई शताब्दियों का व्यवधान है । वात्स्यायन गौतम को बहुत ही प्राचीन मुनि समझते हैं । किसी-किसी सूत्र पर उन्होंने दो-दो प्रकार के वैकल्पिक अर्थ दिये हैं । इससे सूचित होता है कि वात्स्यायन के बहुत पहले ही से न्यायसूत्र की पठन-पाठन -परम्परा चली आती थी, और कतिपय सूत्रों के

---

1. प्रो. हरिमोहन झा. -भारतीय दर्शन परिचय, पृ.क्र.9-10

भिन्न-भिन्न अर्थ भी प्रचलित थे ।

वात्स्यायन -भाष्य में स्थान-स्थान पर सूत्रों की व्याख्या में श्लोकबद्ध सिद्धान्त भी पाये जाते हैं ।यह लक्षण वार्त्तिक ग्रन्थों का है । इससे जान पड़ता है कि वात्स्यायन के पूर्व से ही गौतमीय न्याय पर वाद-विवाद की परिपाटी थी, और विवादास्पद विषयों पर आचार्यों ने अपने-अपने सिद्धान्त स्थिर किये थे । जिनका उद्धरण भाष्य में पाया जाता है ।

वात्स्यायन ने अपने भाष्य में पतञ्जलि के महाभाष्य तथा कौटिल्य के अर्थ शास्त्र से भी उद्धरण दिये हैं । इन्होंने जगह-जगह पर बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन के आक्षेपों का भी उत्तर दिया है । इससे जान पड़ता है कि भाष्य की रचना नागार्जुन के बाद हुई है । और भाष्य में बौद्ध मत का जो खण्डन किया गया है उसका प्रत्युत्तर दिङ्नागाचार्य ने दिया है । इससे सूचित होता है कि वात्स्यायन नागार्जुन से पीछे और दिङ्नाग से पहले हुए थे । नागार्जुन का समय प्रायः 300 ई. और दिङ्नागाचार्य का समय 500 ई. के लगभग माना जाता है । इसलिये अधिकतर विद्वान् वात्स्यायन- भाष्य का रचना काल 400 ई. के आसपास कायम करते हैं ।

वात्स्यायन के अनन्तर जो सबसे महत्त्वपूर्ण न्यायग्रन्थ प्रणीत हुआ, वह उद्योतकर का न्यायवार्त्तिक है । भाष्य पर दिङ्नागाचार्य ने जो आक्षेप किये थे उपका वार्त्तिककार ने अच्छी तरह निराकरण किया है ।

बौद्धों और नैयायिकों के विवाद का इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है । गौतम ने न्याय सूत्र की रचना की । बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन (300 ई.) ने उसमें दोष निकाले । वात्स्यायन (400 ई.) ने अपने भाष्य में उन दोषों का उद्धार किया । दिङ्नागाचार्य (500 ई.) ने वात्स्यायन भूलें दिखलाई । उद्योतकर (600 ई.) ने अपने वार्त्तिक में उनका जवाब दिया । धर्मकीर्ति (700 इ.) ने अपने न्यायबिन्दु नामक ग्रन्थ में वार्त्तिककार का प्रत्यूत्तर किया । धर्मोन्तर ने न्यायबिन्दु पर टीका की रचना कर दिङ्नाग और धर्मकीर्ति का समर्थन किया । तब उद्भट विद्वान वाचस्पति मिश्र (800 ई.) ने न्यायवार्त्तिक- तात्पर्य -टीका का रचना कर बौद्ध आक्षेपों का खण्डन करते हुए न्यायवार्त्तिक का उद्धार किया । जैसा ये स्वयं कहते हैं-

इच्छामि किमपि पुण्यं दुस्तरकुनिबन्धपंकमग्नानाम् ।
उद्योतकरगवीनामतिजरतीनां समुद्धरणात् ।।[1]

वाचस्पति मिश्र अद्वितीय विद्वान थे । इनका जन्म मिथिला प्रान्त के एक प्रतिष्ठत

1. वाचस्पति मिश्र - न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका, पृ.क्र.26

ब्राह्मण -वंश में हुआ थ । ये अपूर्व प्रतिभाशाली थे । इनकी प्रगति सभी शास्त्रों में समान रूप से थी । प्रायः ऐसा कोई दर्शन नहीं जिस पर इन्होंने भाष्य अथवा टीका की रचना नहीं की हो । और जिस विषय को इन्होंने लिया है उसी में अपने प्रकाण्ड पाडित्य का परिचय दिया है ।

सांख्य पर इनकी सांख्यतत्त्वकौमुदी देखिये तो मालूम होगा कि ये सांख्यमत के कट्टर समर्थक हैं । वेदान्त पर इनकी भामती टीका पढ़िये तो ज्ञात होगा कि ये घोर वेदान्ती हैं और न्याय पर इनकी तात्पर्य टीका देखिये तो जान पड़ेगा कि ये प्रचण्ड नैयायिक हैं ।इसलिये ये षड्दर्शनबल्लभ या सवर्तन्त्रस्वततन्त्र नाम से विख्यात हैं । इनकी स्त्री का नाम भामती था। इन्ही के नाम पर इन्होंने ब्रह्मसृत्र पर भामती नामक टीका की रचना की है । स्थान-स्थान पर इन्होंने अपने गुरु त्रिलोचन का भी नामोल्लेख किया है ।

वाचस्पति मिश्र का जन्म नवीं शताब्दी में हुआ था । बौद्धों के प्रबल आक्रमण से न्याय शास्त्र का उद्धार करना इन्ही जैसे दुर्द्धर्ष महारथी का काम था । न्याय -साहित्य में इनकी तात्पर्य टीका का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसी कारण ये तात्पर्याचार्य कहे जाते हैं । न्याय दर्शन पर इनकी दो और कृतियाँ मिलती हैं -

1) न्यायसूत्रोद्धार 2) न्यायसूची निबन्ध

ये दोनों ग्रन्थ भी बहुत उपयोगी हैं । न्यायसूची निबन्ध के अन्त में ग्रन्थ का रचना काल यो वर्णित है-

न्यायसूचीनिबन्धोऽसौ अकारि सुधियां मुदे ।
श्री वाचस्पतिमिश्रेण वस्वंकवसुवअरे ।।[1]

इसके अनुसार ग्रन्थप्रणयन काल 898 संवत् निकलता है । इस श्लोक से वाचस्पति मिश्र से समय के विषय में सन्देह नहीं रह जाता ।

वाचस्पति मिश्र के बाद न्याय के आकाश में एक और जाजवल्ययान नक्षत्र का उदय हुआ । ये थे उदयनाचार्य में न्यायाचार्य नाम से भी प्रख्यात हैं । इन्होंने न्याय साहित्य के भंडार को अपने अनुपम रत्नों से परिपूर्ण कर दिया है । नीचे इनकी प्रसिद्ध कृतियों के नाम दिये जाते हैं ।

---

1. गौतम वात्स्यायन वाचस्पति मिश्र गंगानाथ झा- न्यायसूची निबन्ध पृ.क्र. 173

1) तात्पर्यपरिशुद्धि - इसमें वाचस्पतिकृत तात्पर्यटीका के कठिन अंशों की सूक्ष्म व्याख्या है । पण्डित -मण्डली में इसका बड़ा आदर है ।

2) न्यायकुसुमाञ्जली- इसमें चमत्कृत युक्तियों के द्वारा ईश्वर का अस्तित्त्व प्रमाणित किया गया है । ईश्वरवाद का यह सबसे प्रसिद्ध और सुन्दर ग्रन्थ समझा जाता है। नास्तिक बौद्धों के कुतर्कों का मुँहतोड़ जवाब देते हुए उदयनाचार्य ने अनीश्वर वादियों से ईश्वर की रक्षा की है । इस विषय में उनकी गर्वोक्ति सुनने लायक है-

''एकश्वर्यमदमन्तोऽसि मामवज्ञाय वर्त्तसे ।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः ।।''[1]

ये ईश्वर को संबोधित कर कहते हैं- ''तुम अपने घमंड में फूले बैठे हो । मेरी परवा क्यों करने लगे ? पर इतना ध्यान रखों कि नास्तिक बौद्धों के चंगुल से तुमको छुड़ानेवाला मेरे सिवा और कोई नहीं हैं ।''

3) आत्मतत्त्वविवेक- इसमें आत्मा के अस्तित्त्व का युक्तिपूर्ण प्रतिपादन किया गया है । आर्यकीर्ति प्रभृति अनात्मवादी बौद्धों के मत की इसमें भरपूर खिल्ली उडाई गई है। इसलिये यह ग्रंथ बौद्धधिककार नाम से भी प्रसिद्ध है ।

4) किरणावली- यह प्रशस्तपाद के भाष्य (वैशेषिक) पर पाण्डित्यपूर्ण टीका हैं।

5) न्यायपरिशिष्ट- इसमें न्याय -वैशेषिक के विविध विषयों की सूक्ष्म आलोचना की गई है । इसका दूसरा नाम ''प्रबोधसिद्धि'' भी है ।

6) लक्षणावली- इसमें न्यायमतानुसार लक्षण निर्धारित किये गये हैं । इस ग्रन्थ के शेष में रचना काल इस प्रकार दिया है -

तर्काम्बराङ्कप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः ।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम् ।।[2]

इसके अनुसार 906 शताब्दी का समय निकलता है

उद्यनाचार्य मैथिला ब्राह्मण थे । दरभंगा जिले में 'करियन' नामक एक गाँव है । वही इनका जन्म स्थान माना जाता है । भक्ति-माहात्म्य नामक ग्रन्थ में इनकी प्रशंसा में यह

1. उदयनाचार्य - न्यायकुसुमाञ्जलि, पृ.क्र.26
2. उदयनाचार्य - लक्षणावली पृ.क्र.174

श्लोक मिलता हैं-

भगवानपि तत्रैव मिथिलायां जनार्दनः
श्री मदुदयनाचार्यरुपेणावततार हे [1]

दशवीं शताब्दी में न्याय के दो और प्रसिद्ध ग्रन्थकर हुए हैं ।

1. जयन्त भट्ट

2. भासर्वज्ञ

जयन्त भट्ट ने गौतम के चुने हुए सूत्रों पर अपनी स्वतंत्र टीका की है । जो न्यायमंजरी नाम से प्रसिद्ध है । न्यायमंजरी जयन्त के समय में ही इतनी लोकप्रिय हो उठी कि जयन्त भट्ट वृत्तिकार कहलाने लगे ।

भासर्वज्ञ प्रायः काश्मीरी ब्राह्मण थे । इन्होंने न्यायकार नामक मौलिक ग्रन्थ की रचना की है । इसमें न्याय का सारभाग वर्णित है । इसकी विशेषता यह है कि लेखक ने जगह-जगह पर न्याय की प्राचीन परिपाटी का उल्लङ्घन कर दिया है । जैसे न्यायनुमोदित चार प्रमाण न मानकर इन्होंने तीन ही प्रमाण माने हैं और उपमान को स्वतंत्र प्रमाण स्वीकृत नहीं किया है। इसी तरह इन्होंने अनध्यवसित नामक एक छठा -हेत्वाभास भी माना है ।

न्याय और वैशेषिक का ऐसा सम्मिश्रण होता आया है कि दोनों के साहित्य का पृथक-करण करना कठिन है । शिवादित्य की सप्तपदार्थी वरदराज की तार्किकरक्षा, केशव मिश्र की तर्कभाषा, ये सब न्याय -वैशेषिक की उभयनिष्ठ पुस्तकें हैं ।

12 वीं शताब्दी में मिथिला देश में एक ऐसे महाविद्वान् का अविर्भाव हुआ जिन्होंने न्याय के क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित कर दिया । इनका नाम था गंगेश उपाध्याय । इन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि और असाधारण प्रतिभा के बल पर न्यायशास्त्र की शैली और विचारधारा में अद्भुत परिवर्तन कर दिखाया । यहाँ तक कि इनका निरूपित न्याय नव्य न्याय कहलाने लगा। इनका रचित 'तत्त्वचिन्तामणि' नव्य न्याय का प्रथम और आधारभूत ग्रन्थ है । इसमें चार खण्ड हैं-

1. प्रत्यक्ष खण्ड **2. अनुमानखण्ड**

---

1. उदयनाचार्य - भक्तिमाहात्मय 31/23

3. शब्दखण्ड 4. उपमान खण्ड

'तत्त्वचिन्तामणि' सचमुच चिन्तामणि स्वरूप है । इसमें प्रामाण्यवाद, पत्यक्षकरणवाद, मनोडणुतत्त्ववाद, व्याप्तिग्रहोपाय आदि गहन विषयों की ऐसी गंभीर मीमांसा की गई है, जिसे देखकर बड़े-बड़े मेधावी विद्या -दिग्गजों की बुद्धि चकरा जाती है । यह ग्रन्थ गूढ़ विषयों का रत्न-भाण्डागार हैं ।

प्राचीन न्याय मुख्यतः पदार्थ शास्त्र था, नव्य न्याय मुख्यतः प्रमाण शास्त्र रह गया। प्राचीन न्याय में जहाँ केवल सीधीसादी भाषा में उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा का व्यवहार था, वहाँ नव्य न्याय में अवच्छेदक- अवच्छेद्य,निरूपक निरूप्य, अनुपयोगी - प्रतियोगी, विषयता-प्रकारता आदि नवीन शब्दों का प्रयोग होने लगा । इन जटिल लच्छेदार शब्दों की सृष्टि से न्याय की भाषा असन्त ही दुरूह और क्लिष्टबोध हो उठी । किन्तु यह कोरा आडम्बरपूर्ण वाग्जाल ही नहीं था । नवीन पारिभाषिक शब्दों से सूक्ष्मतिसूक्ष्म भावों का विश्लेषण आसानी के साथ होने लग गया ।

गंगेश के 'तत्त्वचिन्तामणि' पर जितनी टीकाएँ लिखी गई हैं उतनी बहुत ही कम ग्रन्थों पर होंगी । उनका यह ग्रन्थ 'चिन्तामणिं या केवल 'मणि' के नाम से भी नैयायिकों के बीच में प्रसिद्ध हैं ।

गंगेश उपाध्याय के सुपुत्र वर्द्धमान उपाध्याय प्रसिद्ध टीका कार हुए हैं । इन्होंने 'मणि' पर टीका लिखी है । इन्होंने उदयनाचार्यकृत न्यायकुसुमाञ्जलि पर भी टीका की है जो 'कुसुमाञ्जलि प्रकाश' नाम से विख्यात है। उदयनाचार्य की न्यायतात्पर्यपरिशुद्धि पर इनकी न्यायनिबन्धप्रकाश' नामक टीका है । बल्लभाचार्य रचित 'न्यायलीलावती' पर इनकी लीलावतीकंठाभरण नाम का टीका है ।

तेरहवीं शताब्दी में मिथिला ने एक और उद्भट नैायायिक को जन्म दिया । इनका नाम था पक्षधर मिश्र । कहा जाता है कि ये जिसे पक्ष को लेते थे उसे बिना सिद्ध किये नहीं छोड़ते थे । इनके विषय में लोकोक्ति है-

''पक्षधर प्रतिपक्षी लक्ष्मीभूतो न च काक्पि'' [1]

ये नव्यन्याय के धुरन्धर आचार्य थे । तत्त्वचिन्तामणि पर इन्होंने मण्यालोक नामक

---

1. उदयनाचार्य - लक्षणावली, पृ.क्र. 175

व्याख्या लिखी है, जो बहुत ही प्रसिद्ध है । इनके शिष्य रूचिदत्त ने वर्द्धमान के कुसुमाञ्जलि प्रकाश पर 'मकरन्द' नामक टीका की रचना की । प्राचीन न्याय के जन्मदाता गौतम और नव्यन्याय के प्रवर्तक गंगेश दोनों को उत्पन्न करने का श्रेय मिथिला ही को है । अतः मिथिला न्याय की जन्म भूमि मानी जाती है । वाचस्पति मिश्र, उदयानाचार्य पक्षधर मिश्र, रूचिदत्त, शंकर प्रभृति मिथिला के विद्वद्रत्न थे । इनके विषय में यह श्लोक आज भी मिथिला में प्रसिद्ध है-

शंकरवाचस्पत्योंः शंकरवाचस्पती सदृशौ ।[1]
पक्षधर प्रतिपक्षी लक्ष्मीभूतो न च काक्पि ।।

दूर-दूर देशों के लोग यहाँ न्याय पढ़ने के लये आते थे और वर्षों के उपरान्त पण्डित बन कर यहाँ से लौट जाते थे । 'भक्तिमाहात्म्य' नामक ग्रन्थ में इसका स्पष्ट वर्णन पाया जाता है ।

अद्यापि मिथिलाया तु तदन्वयभवा द्विजाः ।
विद्वांसः शास्त्रसम्पन्नाः पाठयन्ति गृहे गृहे ।।[2]

यह गुरु- शिष्य- परम्परा पन्द्रहवीं तक कायम रही इसके अनन्तर वासुदेव सार्वभौम प्रभृति वंगीय विद्वानों ने मिथिला से विधार्जन कर नवद्वीप में विद्यापीठ स्थापित किया । धीरे-धीरे यही नवद्वीप (नदियां) न्याय के अध्ययन- अध्यापन का केन्द्र स्थल हो गया । इसकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई और नव्य न्याय का पौधा इस भूमि में पनप कर खूब ही शाखा पल्लवयुक्त होकर बढ़ने लगा ।

नदिया विद्यापीठ की स्थापना सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई । इसके संस्थापक वासुदेव सार्वभौम न्यायशास्त्र के धुरन्धर आचार्य थे । इनकी तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या इनके प्रकाण्ड पाणिडल्य की परिचायिका है ।

वासुदेव सार्वभौम के शिष्य भी वैसे ही यशस्वी निकले । चैतन्य महाप्रभु का नाम बंगाल के घर- घर में प्रसिद्ध है । ये इन्ही के शिष्य थे । दूसरे शिष्य रघुनाथ तर्कशिरोमणि अपने समय में (16 वीं शताब्दी में) देश के समस्त नैयायिकों में शिरोमणि थे । इन्होंने न्याय के भण्डार को अपनी विद्धन्तापूर्ण टीकाओं से अत्यन्त ही समृद्धिशाली बना दिया । इनकी

---

1. उदयनाचार्य - लक्षणावली, पृ.क्र. 175
2. उदयनाचार्य - भक्तिमाहात्मय पृ. 31/81

सबसे प्रसिद्ध टीका है 'मण्यालोक' पर लो 'मण्यालोकदीधिति' अथवा केवल दीक्षित नाम से प्रख्यात है ।

रघुनाथ तर्कशिरोमणि के सबसे प्रसिद्ध शिष्य हुए मथुरानाथ तर्कवागीश इन्होंने मणि और दीक्षित पर जो टीकाएँ की हैं । वे बहुत ही प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं ।

सत्रहवी शताब्दी में नवद्वीप विद्यापीठ के दो दुर्द्धर्षा महारथी न्याय के प्राङ्गण में आये। ये जगदीश और गदाधर । न्यायशास्त्र के दुर्गम कानन में ये दोनों केसरी- स्वरूप थे । नव्यन्याय में ये अपना सानी नहीं रखते थे 'दीक्षित' की टीका रचना में दोनों ने अपना -अपना चमत्कार दिखलाया है । जगदीशकृत टीका जगदीशी और गदाधरकृत टीका गादाधरी नाम से प्रसिद्ध है ।

जगदीश ने प्रशस्तवाद भाष्य पर भी टीका की है जो भाष्य सूक्ति कहलाती है । इसके शिवा तर्कामृत और शब्द शक्तिप्रकाशिका भी इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । एतद्तिरिक्त 'अनुमिति रहस्य' 'अवच्छेदकत्त्वनिरूक्ति' प्रभृति इनके पचासों स्फूट निबन्ध भी मिलते है ।

गदाधर ने अपनी अमूल्य कृतियों से न्याय के भंडार को जितना भरा है उतना शायद और किसी ने नहीं । गादाधरी टीका के अतिरिक्त उन्होंने मूलगादाधरी भी लिखी है जिसमें मणि के प्रमुख अंशों की व्याख्या है । उदयनाचार्य कृत आत्मतत्त्व विवेक पर भी इनकी टीका पाई जाती है । इसके सिवा व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद आदि विषयों पर इनके सैकड़ों स्फूट निबन्ध हैं ।

आज भी नव्यन्याय के विद्यार्थी जगदीशी और गादराधरी की रट लगाते हैं । नव्यन्याय की उपमा एक विशाल वटवृक्ष से दी जा सकती है, जिसकी जड़ मिथिला में रोपी गई । उससे तत्त्वचिन्तामणि रूपी धड़ उत्पन्न हुआ । उसकी शाखाएँ दूर-दूर तक जा फैली और बंगाल में दीक्षित रूपी बरोह की उत्पत्ति उससे हुई । उसी में फले हुए जगदीशी और गादाधरी आज भी न्यायरसिकों को रसास्वादन करा तृप्ति प्रदान करते हैं ।

इसके उपरान्त जो न्याय साहित्य तैयार वह अधिकांशतः बालकोपायोगी है । ग्रन्थकारों का ध्यान छोटे मोटे छात्रोंपयुक्त ग्रन्थों की रचना की और आकर्षित हुआ । इन ग्रन्थकारों में तीन के नाम अग्रगण्य है

1. शंकर मिश्र 2. विश्वनाथ पंचानन 3. अन्तरम् भट्ट

1. शंकर मिश्र

मैथिल ब्राह्मण थे । इन्होंने जगदीशी पर सुगम टीका की रचना की है । वैशेषिक सूत्र पर इनका रचित उपस्कार बहुत ही सुबोध और उपयोगी है । शंकर मिश्र के पिता भवनाथ मिश्र भी धुरन्धर नैयायिक थे । ये मिथिला में अयाची मिश्र नाम से अधिक प्रसिद्ध है । शंकर बाल्यावस्था से ही कुशाग्र बुद्धि थे । कहा जाता है, इन्होंने पाँच वर्ष की अवस्था में ही मिथिलेश को यह श्लोक बनाकर सुनाया था

बालोऽहं जगदानन्द । न मे बाला सरस्वती ।
अपूर्णों पञ्चमे वर्षें वर्णयामि जगन्तृयम् ।[1]

2. विश्वनाथ पञ्चानन

वगीय ब्राह्मण थे । इन्होंने न्यायसूत्र पर अत्यन्त ही सरल और छात्रोपयोगी वृत्ति की रचना की है । इसके अतिरिक्त न्यायवैशेषिक के प्रमुख सिद्धान्तों को इन्होंने पद्यबद्ध कर विद्यार्थियों के लिए बडा ही सुगम मार्ग बना दिया है । इस पुस्तक का नाम कारिकावली है । यह भाषा परिच्छेद के नाम से भी प्रसिद्ध है । इसमें 168 श्लोक है । इन श्लोकों पर ग्रन्थकार की स्वरचित सुन्दर टीका है जो सिद्धान्त मुक्तावली कहलाती है ।

3. अन्नम् भट्ट

आन्धदेशीय ब्राह्मण थे । इनका रचित तर्कसंग्रह विद्यार्थियों के बड़े काम की चीज है ये स्यमं कहते है -

बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रह [2]

तर्कसंग्रह और इस काम में ये खूब ही सफल हुए हैं । आज भी न्याय के विद्यार्थी तर्क संग्रह से ही श्रीगणेश करते हैं । छात्रों के लिये न्याय विषयक इतनी सरल पुस्तक प्रायः दूसरी कोई नहीं है । तर्कसंग्रह पर ग्रन्थकार की स्वरचित टीका तर्कसंग्रह दीपिका है । वह भी वैसी ही सरल और सुबोध है । अन्नम् भट्ट की कृति बालगादा धरी कहलाती है, क्योंकि इसमें गादा धरीय न्याय का सार भाग निचोड़ लिया गया है ।

अन्नम् भट्ट ने पक्षधर मिश्र के मण्यालोक पर सिद्धाञ्जन नामक विद्वत्तापूर्ण टीका की

---

1. शंकर मिश्र- मयूख टीका - पृ. क्र. 4
2. अन्नम् भट्ट - तर्कसंग्रह - पृ.क्र. 1

रचना की है । इनकी प्रगति सभी शास्त्रों में समान रूप से भी । व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त आदि । भिन्न-भिन्न विषयों पर इनकी प्रतिभापूर्ण कृतियाँ देखने में आती है ।

अन्नम् भट्ट के तर्कसंग्रह से ही आधुनिक विद्यार्थियों को न्याय का श्रीगणेश कराया जाता है । प्रायः प्रत्येक प्रान्त में यही परिपाटी प्रचलित है इसके उपरान्त भाषा परिच्छेद और सिद्धान्त मुक्तावली का नम्बर आता है । तदनन्तर सूत्र,भाष्य, वार्तिक,वृत्ति आदि का अध्ययन होता है । बंगाल और मिथिला में आजकल नव्य न्याय का ही अधिकतर प्रचार है । इनके लिये जगदीशी, गादाधरी आदि टीकाएँ पाठ्य ग्रन्थ हैं ।

९. न्याय का साहित्य भंडार

गौतम से लेकर आजतक न्याय दर्शन को जो विशाल साहित्य तैयार हुआ है उसका पूरा पूरा विवरण देना असंभव सा है । तथापि न्यायसूत्र रूपी मूलवृक्ष से किस प्रकार शाखाएँ और प्रशाखाएँ निकली है इसका थोड़ा दिग्दर्शन यहाँ कराया जाता है ।

1. गौतम कृत न्यायसूत्र
2. वात्सयायन कृत न्यायसूत्र भाष्य
3. उद्योतकर कृत न्यायवार्त्तिक
4. वाचस्पति कृत न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका
5. उदयन कृत न्यायवार्त्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि
6. वर्द्धमान कृत परिशुद्धिटीका (न्याय निबन्ध प्रकाश)
7. पद्यनाथ कृत न्यायनिबन्ध प्रकाश टीका (वर्द्धमानेन्दु)

यह तो हुई केवल एक शाखा । अब देखिये, अकेले न्याय सूत्र पर ही कितनी टीकाएँ लिखी गई हैं -

क) विश्नाथ - न्यायसूत्रवृत्ति

ख) नागेश - न्यायसूत्रवृत्ति

ग) जयन्त - न्यायसूत्रवृत्ति (न्यायमंजरी)

घ) महादेव भट्ट - न्यायसूत्रवृत्ति (मितभाषिणी)

ङ) राधामोहन - न्यायसूत्रवृत्ति (न्यायसूत्र विवरण)

च) मुकुन्ददास - न्यायसूत्रवृत्ति

छ) चन्द्रनारायण - न्यायसूत्रवृत्ति

ज) अभयतिलक - न्यायसूत्रवृत्ति (न्यायवृत्ति)

झ) वाचस्पति - न्यायसूत्रवृत्ति (न्यायसूत्रोद्धार)

अब देखिये शाखा ग्रन्थ पर भी कितनी टीका रुपिणी उपशाखाएँ निकली हैं ।

उदयनाचार्य ने न्यायकुसुमाञ्जलि लिखी । उस पर इतनी भिन्न-भिन्न टीकाएँ मिलती है ।

क) वर्द्धमान कृत - प्रकाश नामक टीका

ख) रुचिदत्त कृत - मकरन्द नामक टीका

ग) गुणानन्द कृत - विवेक नामक टीका

घ) गोपीनाथ कृत - विकाश नामक टीका

ङ) जयराम कृत - विवरण नामक टीका

च) वरदराज कृत - टीका

छ) चन्द्रनारायण कृत - टीका

इसी प्रकार उदयन के आत्मतत्त्व विवेक पर वर्द्धमान, मथुरानाथ, और हरिदास मिश्र की अलग अलग टीकाएँ उपलब्ध है ।

वरदाचार्य की तार्किक रक्षा पर नृसिंह ठाकुर की प्रकाशिका टीका विनायक भट्ट की न्यायकौमुदी तथा मल्लिनाथ की निष्कण्टक नामक टीकाएँ है ।

अब नत्यन्याय का प्रसार देखिये । प्रथमतः गंगेश उपाध्याय ने तलचिन्तामणि की रचना की । उस पर इतनी प्रमुख टीकाएँ लिखी गई -

क) वासुदेव सार्वभौम कृत - टीका

ख) पक्षधर मिश्र कृत - तत्त्वालोक

ग) हनुमान् कृत - हनुमदीय टीका

घ) तर्क चूड़ामणि कृत - मणिप्रकाश

ङ) रघुनाथ तर्कशिरोमणि कृत - तत्त्वदीधिति

अब तत्त्वदीधिति को लीजिये । इस पर इतनी टीकाएँ प्रसिद्ध है -

क) जगदीश कृत - जागदीशी टीका

ख) गदाधर कृत - गादाधरी टीका

ग) मथुरानाथ कृत - मथुरानाथी टीका

घ) भवानन्द कृत - भवानन्दी टीका

ङ) शंकर कृत - मयूख टीका

जगदीशी टीका की भी टीका शंकर मिश्र ने की है । इसी तरह गादाधरी टीका की टीका रघुनाथ शास्त्री ने की है । इस प्रकार न्याय रूपी वटवृक्ष की शाखाएँ फैलती हुई चली गई है।

एक डाल से कितनी डलियाँ फूटी है इसका एक और नमूना लीजिये । केशव मिश्र की एक प्रसिद्ध कृति है तर्कभाषा । उस पर इतनी टीकाएँ मिलती है ।

1.	रामलिंग	कृत	टीका
2.	माधवदेव	कृत	टीका
3.	सिद्धचन्द्र	कृत	टीका
4.	मुरारि	कृत	टीका
5.	माधव भट्ट	कृत	टीका
6.	चिन्नभट्ट व्यंकटाचार्य	चिन्नभट्टी टीका	
7.	गोवर्द्धन कृत	तर्क भाषा प्रकाश	
8.	शुभ विजय रचित	तर्क भाषा विवरण	
9.	गणेश दीक्षित रचित	तत्त्व प्रबोधिनी	

10.	वागीश कृत	प्रसादिनी
11.	गौरीकान्त कृत	भावार्थ दीपिका
12.	विश्वनाथ कृत	न्यायविलास
13.	अज्ञात कृत	न्यायप्रदीप
14.	कौण्डिण्ड दीक्षित कृत	प्रकाशिका
15.	गोपीनाथ कृत	उज्जवला
16.	भास्कर कृत	दर्पणा
17.	नागेश कृत	योगावली
18.	दिनकर कृत	कौमुदी

न्याय के सुविस्तृत साहित्य की व्यापकता का अन्दाज इसी से लग जायगा । न्याय दर्शन पर आज तक जितनी रचनाएँ हुई हैं उन सबों का यदि अन्वेषण और संकलन किया जाय तो महाभारत से भी अधिक विशाल पौधा तैयार हो जायगा हर्ष की बात है कि अब आधुनिक शिक्षा प्राप्त विद्वानों का ध्यान भी इस और जाने लगा है और बहुत-सी लुप्तप्राय कृतियाँ प्रकाश में आ रही हैं ।

१०. इस ग्रन्थ का विषय -विन्यास

गौतमोक्त षोडश पदार्थ (जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है) न्यायशास्त्र के आधारभूत विषय हैं । प्रस्तुत पुस्तक में क्रमानुसार प्रत्येक विषय को लेकर उसका विवेचन किया गया है ।

न्यायशास्त्र का सर्वप्रधान विषय है प्रमाण । अतः सर्वप्रथम प्रमाण की विवेचना की गई है । प्रमाण के अन्तर्गत

1. प्रत्यक्ष	**2. अनुमान**
3. उपमान	**4. शब्द**

के पृथक-पृथक खण्ड किये गये हैं । ये प्रमाण ही आधुनिक न्याय साहित्य से आधारस्तम्भ हैं । अतः इनकी व्याख्या सविस्तार रूप से की गई है । बल्कि ग्रन्थ का

अधिकांश भाग इन्ही में लगाया गया है ।

प्रमाणों के अन्तर्गत भी अनुमान प्रमाण नैयायिकों का सबसे मुख्य और महत्त्वपूर्ण विषय है । अतएव इस विषय की विशेष रूप से विवेचना की गई है । नव्यन्याय में अनुमान के अङ्गीभूत विषयों का जो सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है उसका भी यथास्थान दिग्दर्शन कराया गया है इस कारण अनुमान का प्रकरण सबसे अधिक विस्तृत हो गया है ।

प्रमाणों के अनन्तर प्रमेय का परिचय दिया गया है । आत्मा प्रभृति द्वादश प्रमेयों के लक्षण और स्वरूप बतलाये गये हैं ।

तत्पश्चात् अवशिष्ट पदार्थो का (संशय, प्रजोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेलाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान का वर्णन किया गया है । परिशिष्ट भाग में ईश्वर मोक्ष, पुनर्जन्म आदि विविध विषयों की आलोचना की गई है।[1]

ooo

1. प्रो. हरिमोहन झा, भारतीय दर्शन परिचय, पृ.क्र. 20-21